ओ३म् ।

अध्यात्म-विवेक ।

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्री आत्मानन्द तीर्थ स्वामि, विरचिते
आर्य सुभाषा भूषिते "अध्यात्म विवेक:" ।

[ग्रन्थकर्त्ता सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः]

धर्म संस्थान, रवरवौदा, मेरठ, उ.प्र.
भारत ।

ओ३म्।

विषयानुक्रमणिका।

क्रम संख्या	विषय।	पृष्ठ संख्या
१.	विषयानुक्रमणिका।	
२.	प्रस्तावना।	५
३.	ईश्वर।	७
४.	नित्य और उत्पत्ति, जीव, पुरुष।	१०,११
५.	जीव का परिमाण, जीव का शरीर में निवास।	११,१२
६.	जीवों की संख्या व प्रकृति।	१२
७.	सृष्टि और जगत की उत्पत्ति के कारण।	१४
१०.	ज्ञान की उत्पत्ति के तीन सनातन कारण।	१५
११.	द्रव्य।	१६
१२	पदार्थ, पदार्थ भेद।	१७
१३	सृष्टि रचना।	१८
१४.	परमाणु और सृष्टि।	२०
१५.	सृष्टि रचना में परमात्मा का प्रयोजन।	२०
१६	जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म	२१
१७.	और स्वभाव।	२२
१८.	जीव की शक्ति।	२३
२०	जीवों को कर्मानुसार विभिन्न	
२१.	योनियों की प्राप्ति।	२४
२२	जीव को उसके कर्मों का फल ईश्वर	
२३.	देता है	२५
	जीवों के पाप ईश्वर कभी क्षमा नहीं	

विषयानुक्रमणिका ।

क्रम संख्या	विषय ।	पृष्ठ संख्या
१९.	करता है।	२४
२०	शरीर त्यागने के पश्चात् जीव की स्थिति।	२५
	जीव को अपने गुण कर्म और स्वभाव	
	के अनुसार योनियों की प्राप्ति होती	२६
२१	होती है।	
	वृक्षों को काटने पर उनको दुःख	
	प्राप्त नहीं होता है। जीव को दुःख	
२२	प्राप्त नहीं होता	२८
	सुप्तावस्था में जीव के पाप-पुण्यों की	
२३	विद्यमानता।	२९
२४.	सृष्टिकाल तथा मानवोत्पत्ति काल।	३०
२५	वेदों का आविर्भाव एवम् तद्विषयक काल।	३२
	सृष्टि में मानव के विद्यमान रहने	
२६	की अवधि।	३१
२७.	वेदों के प्रकाश का प्रयोजन।	३३
२८.	प्रलय।	३३
२९	प्रलय में काल में जीव की स्थिति।	३४
	मुक्ति में, जीवात्मा में वासनाओं का	
३०.	अभाव नहीं होता।	३५
	मुक्ति में जीव का निर्बाध सुख और	
३१	आनन्द भोगने का समय।	३५
३२	जीव परमात्मा के समान सर्वथा	

विषयानुक्रमणिका ।

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
३२	निराकार नहीं है।	३६
३३.	जीव की मलिनता और पवित्रता।	३७
३४	योगाङ्गों के अनुष्ठान का फल।	३८
३४	जीव को अपना और परमात्मा का प्रत्यक्ष।	४०
	बन्ध और मोक्ष स्वाभाविक है वा	४०
३५	नैमित्तिक?	४०
३६	बन्ध और मोक्ष किन किन बातों से होता है?	४१
३७	मुक्ति के साधन।	४२
३८	ध्यान करने का न्यूनतम समय।	४६
	समाधि से भिन्न समय में योगी की चित्त	
३९.	वृत्ति की अवस्था।	४६
४०.	कुण्डलिनी शक्ति।	४८
४१.	षट् चक्र अथवा अष्ट चक्र।	४८
४२	योगी का व्यवहार।	४९
४३	आत्मा।	५०
	परमात्मा को ठीक से जानने वाला ही	
४४	परमात्मा को प्राप्त होता है।	५१
४५	आयु।	५२
४६	उपासना।	५५
४७	योग दर्शन प्रोक्त उपासना।	५६
४८	प्राणायाम तथा प्राणायाम का फल।	५९,६२
४९	योगदर्शन के मत में मोक्ष।	६३

विषयानुक्रमणिका।

क्रम संख्या	विषय।	पृष्ठ संख्या
५१	सुख दुःख तथा राग द्वेष।	६४
५२	स्मृति।	६४-६५
५३	ब्राह्मण ग्रन्थों के "प्रज्ञानं ब्रह्म" आदि वाक्यों पर विवेचन।	६५. ६५-६६
५४	स्वप्न।	६६-६७
५५	सुषुप्ति।	
५६	वेद की शाखाओं और कल्प ग्रन्थों का रचना काल। ऋत्विज विवरण।	६८-६९
५७	धारणा, समाधि।	७०.
५८	प्राणायाम।	७१.
५९	प्रत्याहार, ध्यान।	७२.
६०	पञ्च उपप्राण।	७३.

ओ३म्।

सर्व शक्तिमते सच्चिदानन्देश्वराय नमः।

प्रस्तावना।

अध्यात्म विद्या [ब्रह्म विद्या] अत्यन्त सूक्ष्म विषय है। कोई कोई तपस्वी योगी जन परमात्मा की कृपा से इसके यथार्थ स्वरूप को जानते हैं। अध्यात्म विद्या को पराविद्या भी कहते हैं। अध्यात्म विद्या के ज्ञान के बिना आत्मिक उन्नति सम्भव नहीं है। आत्मिक उन्नति के अभाव में मनुष्य, देव तथा ऋषि बन पाना सम्भव नहीं है। आत्मिक उन्नति के बिना सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती है। प्राचीन काल से ही अध्यात्म पर विविध शैली में ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा है। बहुविध तपस्वी योगी जन पूर्वाग्रह रहित होकर इससे लाभान्वित होते रहे हैं। वेदादि सच्छास्त्र प्रमाणों से समन्वित यह "अध्यात्म-विवेक" पुस्तक आध्यात्मिक ज्ञान की उपयोगिता को दृष्टिगत रख कर लिखी गई है।

स्वामी आत्मानन्दतीर्थ

धर्म संस्थान,

खरखौदा, मेरठ, उ.प्र.।

१ माघ, सोमवार, २०५८ विक्रमी।

पौष शुक्ल प्रतिपदा, २०५८ विक्रमी।

ओ३म्।

सर्व शक्तिमते सच्चिदानन्देश्वराय नमः।

१. ईश्वर।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजुर्वेद, ४०।८॥

अर्थः- हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी, सर्व शक्ति शक्तिमान (अकायम्) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर रहित (अव्रणम्) छिद्र रहित और न छिद्र करने योग्य, अखेद्य (अस्नाविरं) नस नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पापयुक्त, पापकारी और पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता, (परि अगात्) सब ओर से व्याप्त है (कविः) सर्वज्ञ, (मनीषी) सब जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप जिसकी संयोग से उत्पत्ति, वियोग से विनाश, माता-पिता, गर्भवास, जन्म, मरना वृद्धि और मरणा नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप अपने- अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः)

यथार्थ भाव से (अर्थात) वेद द्वारा सब पदार्थों को बनाता है, (समाभ्य:) वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने योग्य है।

अ:- ईश्वर।

ईश्वर, सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

आ- परमात्मा की प्रतिमा और प्रतिमान नहीं है।

न तस्य प्रतिमा ऽ अस्ति यस्य नाम महद्यश:।
हिरण्यगर्भ ऽ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न
जात इत्येष ॥ यजुर्वेद, ३२।३॥

अर्थ:- उस परमेश्वर का यश अनन्त है। सूर्य विद्युतादि के तेज का जो धारक है, उसकी प्रतिमा और प्रतिमान नहीं है। वह परमात्मा ही सबके जन्म का कारण है।

इ:- परमात्मा एक ही है।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ अथर्ववेद १३।४।१॥

अर्थ:- परमात्मा दो, तीन या चार नहीं है। वह परमात्मा एक ही है, ऐसा जानो।

ई:- एक परमात्मा के ही गुणवाचक अनेकों नाम हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो
गरुत्मान।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:॥
ऋग्वेद, १।१६४।४६॥

अर्थ:- इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण तथा गरुत्मान वही परमात्मा है। ज्ञानी जन, नानाप्रकार के नामों से उसे अग्नि, यम तथा मातरिश्वा आदि कहते हैं।

उ:- ईश्वर अविद्यादि क्लेशों से रहित है।

क्लेश, कर्म, विपाकाशयै परामृष्ट: पुरुषविशेष ईश्वर:॥
योगदर्शन १।२४॥

ईश्वर, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश आदि क्लेशों, शुभाशुभ कर्मों, कर्मफल (विपाक) तथा वासनादि से सर्वथा रहित है।

ऊ. ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल तथा आकाश की सत्ता नित्य और सनातन है।

ऋ:- ईश्वर, जीव के कर्मों का साक्षी, जीवों को कर्मों के फल का देनेवाला तथा सृष्टि कर्ता धारण कर्ता और प्रलय कर्ता है।

ए:- जीव कर्मों का कर्ता और कर्म फल [illegible] का भोक्ता है।

ऐ:- प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न संसार जीव का

भोगता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानंवृक्षपरिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो ऽअभिचाकशीति॥ ऋग्वेद, १।१६४।२०॥

अर्थः- (द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता पालनादि गुणों से सदृश, व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त, परस्पर मित्रता युक्त अनादि हैं और वैसा ही, अनादि मूल प्रकृति रूप कारण और शाखा रूप स्थूल जगत जो प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है। इन तीनों के गुण कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। जीव और ब्रह्म, इनमें से जीव इस संसार में पाप-पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों को न भोक्ता हुआ साक्षी रूप से सर्वत्र प्रकाशमान होता है। ईश्वर से जीव, जीव से ईश्वर, दोनों और दोनों से प्रकृति, भिन्न स्वरूप तथा तीनों अनादि हैं।

३. नित्य और उत्पत्ति।

सदकारणवन्नित्यम्॥ वैशेषिकदर्शन, ४।१।१॥

— जो स्वयं कारण रूप हो, वह नित्य है।

उत्पत्ति वो अनेक द्रव्यों के संयोग से विशेष से स्थूल पदार्थ का उत्पन्न होना।

४. जीव।

"जीव प्राणधारणे" धातु से जीव शब्द बना है जीव प्राणों को धारण करने वाला है। जीवात्मा, परमात्मा की भाँति नित्य और सनातन है परन्तु परमात्मा के समान सर्वथा निराकार नहीं है।

अ:- पुरुष।

पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा।
पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य॥ निरुक्त, २।३॥

आ:- पुरुषः पुरिषादः - पुरि शरीरे सीदति निषीदतीति, पुरुषः।

जो अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न शरीरों में स्थित रहता है, अर्थात जीव।

इ:- पुरि शरीरे ब्रह्माण्डे वा शेते स्थितो भवतीति पुरुषः।

जो समस्त ब्रह्माण्ड में स्थित है, निवास करता है वह पुरुष अर्थात परमात्मा।

ई:- पूरयति अन्तः।

जो समस्त ब्रह्माण्ड को पूर्ण किये हुए है, वह पुरुष अर्थात परमात्मा।

५- जीव का परिमाण।

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥
अथर्ववेद, १०।८।२५॥

अर्थः- बाल की नोंक से भी सूक्ष्म, जो दिखाई नहीं देता। प्रकृति से परे, चेतन देवता ही मेरा प्रियहै।

अः- जीव के अल्पज्ञ होने के कारण उसका आनन्द भी अल्प है। ज्ञान के बढ़ने के कारण साथ-साथ उसका आनन्द भी बढ़ता जाता है।

आः- जीव का शरीर में निवास।

नेत्रे जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं तद्विलक्षणम्॥

ब्रह्मोपनिषद्॥

जीवात्मा जागृत अवस्था में नेत्रों में, स्वप्नावस्था में कण्ठ में, तथा सुषुप्त अवस्था में हृदय प्रदेश में रहता है। समाधि अवस्था में जीव की विलक्षण स्थिति रहती है।

जब जीवात्मा बाहर व्यवहार करने को चाहता है, तब बहिर्मुख होता है। मन और इन्द्रियों को भी बहिर्मुख करता है और जीव भी नेत्र ललाट ललाट और श्रोत्र के ऊपर के अङ्गों में विहार करता है, जैसे कि सूर्य उदय होकर ऊपर-ऊपर विहार करता है। वैसे जीव भी जब सोना चाहता है तब हृदय पर्यन्त नीचे के अङ्गों में चला जाता है।

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास नौ,
(प्रथम संस्करण)।

इः- जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण।

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ८।

उः- जीव का परिमाण शरीर के अनुसार छोटा-बड़ा नहीं होता है।

जो जैनियों में आर्हत लोग देह के परिमाण से जीव का भी परिमाण मानते हैं, उनसे पूछना चाहिए कि ऐसा होता हाथी का जीव कीड़ी में और कीड़ी का जीव हाथी में कैसे समा सकेगा? क्यों कि यह भी एक मूर्खता की बात है।

क्यों कि जीव एक सूक्ष्म पदार्थ है, जो कि एक परमाणु में भी रह सकता है, परन्तु उसकी शक्तियां शरीर में प्राण, बिजुली और नाड़ी के आदि के साथ संयुक्त हो रहती हैं। उनसे सब शरीर का वर्तमान जानता है। अच्छे सङ्ग से अच्छा और बुरे सङ्ग से बुरा हो जाता है।

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास, बारह।

६. जीवों की संख्या।

जीव की अल्पज्ञ अल्पज्ञता में जीव असंख्य परन्तु परमात्मा की सर्वज्ञता की अपेक्षा से जीव असंख्य नहीं हैं।

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास, बारह।

७. प्रकृतिः।

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।

सांख्यदर्शन, १।६१।

शुद्ध (सत्व) मध्य (रजः) जाड्य अर्थात् जड़ता (तमः) तीन वस्तु मिलकर एक संघात है, उसका नाम प्रकृति है।

८. सृष्टि।

नित्यायाः सत्व रजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृते-रुत्पन्नानां परम सूक्ष्माणां पृथक्-पृथग्वर्तमानानां तत्त्व परमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषा-दवस्थान्तरस्य स्थूलाकार प्राप्ति सृष्टिरुच्यते॥

सांख्यदर्शन्।

अनादि नित्य स्वरूप, सत्व रजस और तमोगुणा रूपी की एकावस्था रूप प्रकृति से उत्पन्न जो परम सूक्ष्म परमाणु रूप पृथक्-पृथक जो तत्वावयव विद्यमान हैं उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है, संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी-दूसरी अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल-स्थूल से बनते-बनते विचित्र रूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है।

९. जगत् की उत्पत्ति के कारण।

जगत् की उत्पत्ति के पूर्व, परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इनमें से एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

१०. जगत् की उत्पत्ति के तीन समानान्तर कारण हैं।

अ:- निमित्त कारण।

निमित्त कारण उसको कहते हैं, कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं। दूसरों को प्रकारान्तर बना देवे।

आ:- उपादान कारण।

उपादान कारण उसको कहते हैं, जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर होके बने रूप से के बने और बिगड़े भी।

इ:- साधारण निमित्त कारण।

साधारण निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो।

११. संसार के कारणों का विवेचन।

निमित्त कारण दो प्रकार के हैं।

अ:- एक सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारण करने और प्रलय करने, तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त परमात्मा।

आ:- दूसरा परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव।

इ:- उपादान कारण:- प्रकृति परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आप से आप न बन और न बिगड़

सकती है, किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगड़ती है।

१२. द्रव्य।

क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिन् तत् क्रियागुणवत्।
जिसमें क्रिया-गुण और केवल गुण भी रहें, उसको द्रव्य कहते हैं।

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥ वैशेषिक दर्शन, १।१।५ ॥
पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन और आत्मा ये नौ द्रव्य हैं।

उनमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुण वाले हैं तथा आकाश काल और दिशा ये तीन द्रव्य क्रिया रहित गुण वाले हैं।

१४- पदार्थ तथा पदार्थ विवरण।

क:- पदार्थ।

जात्याकृतिव्यक्ति यस्तु पदार्थ॥ न्यायदर्शन २।२।६८॥
जाति, आकृति तथा व्यक्ति मिलकर पदार्थ हैं।

ख.- ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब पदार्थ हैं।

ग:- पदार्थ विवेचन।

१. निराकार पदार्थ।	साकार पदार्थ।
ईश्वर तथा आकाश।	प्रकृति।
२. चेतन पदार्थ।	जड़ पदार्थ।
ईश्वर तथा जीव।	प्रकृति तथा

३. नित्य पदार्थ। ईश्वर, जीव, काल तथा आकाश।	प्रकृति, आकाश, तथा काल।
४. नित्य पदार्थ। ईश्वर, जीव, आकाश, तथा काल।	आवयव पदार्थ। जगत तथा जगत में उत्पन्न पदार्थ। अनित्य पदार्थ। जगत तथा जगत में उत्पन्न पदार्थ।
५. निरवयव पदार्थ। ईश्वर, जीव, आकाश तथा काल तथा दिशा।	सावयव पदार्थ। प्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ।

६: पदार्थ विवेचन।

१. चेतन पदार्थ	जड़ पदार्थ।
ईश्वर तथा जीव।	प्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ, काल, आकाश तथा दिशा।
२. निराकार पदार्थ।	साकार पदार्थ।
ईश्वर, आकाश, काल तथा दिशा।	प्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ।

३. निरवयव पदार्थ।	सावयव पदार्थ।
ईश्वर, जीव, काल, आकाश, तथा दिशा।	प्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ।
४. नित्य पदार्थ,	अनित्य पदार्थ।
ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, तथा आकाश।	जगत् प्रकृति से उत्पन्न जगत् तथा दिशा।
५. गुण तथा क्रियावाले पदार्थ।	केवल गुणवाले पदार्थ।
आत्मा, पृथिवी, जल, तेज, वायु, तथा मन।	आकाश काल तथा दिशा।

ङ:- कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः॥
वैशेषिक दर्शन, २।१।२४॥

उपादान कारण के गुणों के सदृश कार्य के गुण होते हैं।

च:- वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती, क्यों कि बिना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहाँ ठहर सकें।

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास, ८।

१८. ~~सृष्टि रचना।~~

~~क:- क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति~~

१८: सृष्टि रचना।

अ:- तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।

आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥ तैत्तिरीयोपनिषद्, ३।४।२॥

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश अर्थात् जो कारण रूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उसको इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न सा होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती। आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है।

आ:- यह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण हैं, और वे सर्वथा निराकार नहीं किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।

इ:- सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्, पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्, पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥ सांख्यदर्शन, १।६१॥

(सत्त्व) शुद्ध, (रजः) मध्य, (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता, तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है, उसका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्त्व बुद्धि,

इससे अहङ्कार, उससे पांच तन्मात्रा (सूक्ष्म भूत) और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात जीव और परमेश्वर हैं। इनमें से प्रकृति अविकारिणी और महतत्त्व अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूल भूतों का कारण हैं। पुरुष न किसी की प्रकृति, उपादान कारण और न किसी का कार्य है।

२५. परमाणु और सृष्टि।

सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणु है, साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्व्यणुक, तीन द्व्यणुक का वायु, चार द्व्यणुक का अग्नि, पांच द्व्यणुक का जल तथा छः द्व्यणुक की पृथिवी अर्थात तीन द्व्यणुक का त्रसरेणु और उसका दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं, अर्थात सात सौ बीस परमाणुओं के मिलने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं।

२६. सृष्टि रचना में परमात्मा का प्रयोजन।

जो ईश्वर में जगत रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है, उसका बिना जगत की उत्पत्ति दूसरा प्रयोजन नहीं है। परमात्मा के न्याय, धारण

तथा दयादि गुण भी जगत बनाने से ही सार्थक हैं। परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत की रचना करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है। यदि सृष्टि के सुख-दुःख की तुलना की जाय तो दुःख से सुख कई गुना अधिक होता और बहुत से पवित्रात्मा जीव, मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं। प्रलय में निकम्मे जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं, और प्रलय के पूर्व सृष्टि में किये पाप-पुण्य कर्मों का सुख-दुःख रूप फल ईश्वर जगत की रचना कर जीवों को देता है।

२७- जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

अ:- ईश्वर और जीव दोनों चेतन स्वरूप हैं, परन्तु ईश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर, अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, न्यायकारी, निराकार तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है।

आ:- जीव अल्प, अल्पज्ञ, एकदेशी, परिछिन्न तथा अल्प सामर्थ्य वाला है। अल्पज्ञ होने के कारण जीव का आनन्द भी अल्प है। शरीर में में एकदेशी, परिछिन्न परिछिन्न तथा अल्प होने पर और जन्म-मरण के समय शरीर त्याग कर आने जाने के कारण, जीव परमात्मा

के समान निराकार नहीं है।

ख:- ईश्वर और जीव दोनों का स्वभाव पवित्र अविनाशी और धार्मिकता आदि है।

ग:- परमेश्वर के सृष्टि उत्पत्ति, धारण, प्रलय को नियम में रखना, जीवों को पाप-पुण्यों के फल देना आदि धर्म युक्त कर्म हैं।

घ:- जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिक्षा, शिल्प विद्या आदि अच्छे बुरे कर्म हैं।

ङ:- ईश्वर के नित्य ज्ञान, आनन्द, अनन्त बल-पराक्रम आदि अनन्त गुण हैं।

च:- जीव के गुण (लक्षण)।

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥ न्याय दर्शन, १।१।१०॥

पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा, दुःखादि से द्वेष, पुरुषार्थ करना, आनन्द सुख, विलाप अप्रसन्नता, विवेक ये जीव के लक्षण (गुण) न्याय दर्शन के अनुसार हैं।

प्राणापान निमेषोन्मेष जीवन, मनोगतीन्द्रियान्तर-विकाराः, सुख दुःखेच्छा द्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ वैशेषिक दर्शन, ३।२।४ ॥

(प्राण) प्राण वायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना, नेत्र बन्द करना तथा खोलना, प्राण का धारण करना, निश्चय, स्मरण करना, और अहङ्कार करना,

चलना, सब इन्द्रियों को चलाना, भिन्न भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष शोकादि युक्त होना, पदार्थों की प्राप्ति, दुःखादि की अनिच्छा, वैर, पुरुषार्थ, बल, आनन्द सुख, विलाप, अप्रसन्नता, विवेक, पहिचानना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं।

१८. जीव शरीर में भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न?

जीव शरीर में भिन्न, एक देशी और परिच्छिन्न है। जो विभु होता तो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, जन्म, मरण, संयोग वियोग, जाना आना कभी नहीं हो सकता। सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ९ ॥

१९:- जीव की शक्ति।

मुख्य एक प्रकार की शक्ति है, परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन, गन्ध ग्रहण तथा ज्ञान, इन चौबीस प्रकार के सामर्थ्य युक्त जीव है। इससे जीव मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति और भोग करता है।

२०:- जीव अपने ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार कर्म करने में स्वतंत्र है।

जीव अपने ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार कर्म करने में स्वतंत्र है, परन्तु कर्म करने के पश्चात ईश्वर की व्यवस्थानुसार पाप-पुण्य कर्मों के

सुख-दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र है।

जीव कर्मों का कर्त्ता तथा कर्म फल का भोक्ता है। जीवों के कर्मों का साक्षी ईश्वर है।

२१. जीवों को कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जाना पड़ता है।

आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि। धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत॥

अथर्ववेद, ५।१।२॥

(आयो धर्माणि) जो मनुष्य पूर्व जन्म में धर्माचरण करता है (ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि) उस धर्माचरण के फल से उत्तम शरीरों को धारण करता है, और अधर्मात्मा मनुष्य नीच कोटि के शरीरों को प्राप्त होता है (धास्युर्योनिं प्रथम आविवेशा) जो पूर्व जन्म में किये हुये पाप-पुण्यों के फलों का भोग करने के स्वभाव युक्त जीवात्मा है वह पूर्व प्राप्त शरीर को छोड़ कर वायु के साथ रहता है, पुनः जल औषधि वा प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है, तदनन्तर योनि अर्थात गर्भाशय में प्रवेश करके स्थित होकर पुनः जन्म लेता है (यो वाचमनुदितां) जो जीव अनुचितकारी अर्थात जैसा ईश्वर ने वेदों में सत्य भाषण करने की आज्ञा दी है वैसा ही (चिकेत) यथावत जानकर बोलता है और धर्म ही में (ससाद) यथावत स्थित रहता है, वह

मनुष्य योनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है, और जो अधर्माचरण करता है, वह अनेक नीच शरीर अर्थात कीट पतङ्ग, पशु आदि आदि के शरीरों को प्राप्त होकर अनेक दुःखों को भोगता है। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पुनर्जन्म विषय)।

जीवात्मा अपने पूर्व जन्मों के कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। अधिकांशतः गर्भाधान काल में ही जीवात्मा का गर्भाशय में प्रवेश हो जाता है, परन्तु जीव के गर्भ में प्रवेश के लिये किसी स्थूल माध्यम का होना अनिवार्य नहीं है।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग तथा वृक्षादि स्थावर योनियों में जीवात्माओं के स्वरूप में समानता है अर्थात जैसा जीवात्मा मनुष्यों में है वैसा ही पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग और वृक्षादि स्थावर में है।

जीव की नित्य, शाश्वत, सनातन तथा चेतन सत्ता है। शरीर के नाश के साथ जीव का नाश नहीं होता।

२२. जीव को उसके कर्मों का फल ईश्वर देता है।

जैसे चोरी करने के पश्चात चोर स्वयं बन्दी-गृह में नहीं जाता, और स्वयं दण्डित नहीं होता किन्तु उसे राजा दण्ड देता है। इसी प्रकार जीव को उसके कर्मों के अनुसार शरीर धारण कराने

और उसके कर्मानुसार फल देने वाला ईश्वर है ऐसा जानो।

२३. जीवों के पाप ईश्वर कभी क्षमा नहीं करता है।

क्यों कि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय, और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्यों कि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाय। जैसे यदि राजा अपराधियों के अपराध को क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक-अधिक बड़े बड़े पाप करें और उनको भी भरोसा हो जाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध क्षमा करा लेंगे तो अन्य जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डरकर पाप करने में प्रवृत्त हों। इसलिये सब कर्मों का फल यथावत देना ही ईश्वर का काम,'न्याय है, क्षमा करना नहीं।

२४. शरीर त्यागने के पश्चात जीव की स्थिति।

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम मृतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे॥ यजुर्वेद ३९।६॥

हे मनुष्यो। इस जीव को शरीर छोड़ने के पश्चात पहिले दिन सूर्य, दूसरे दिन अग्नि, तीसरे दिन वायु, चौथे दिन आदित्य (प्राण) पांचवें दिन चन्द्रमा, छठे दिन मृतु, सातवें दिन मरुत, आठवें दिन बृहस्पति, नौवें दिन मित्र, दसवें दिन वरुण, ग्यारहवें दिन इन्द्र तथा बारहवें दिन विश्वे देवादि सब उत्तम गुण प्राप्त होते हैं।

बारहवें दिन का।

शरीर त्यागने के पश्चात जीव के गर्भ में आ जाने के दिन जीने के समय विकास कर्म नियम सामान्य है, परन्तु सब जीवों के कर्म समान नहीं होते अतः मृत्यु के समय जीव का शरीर त्यागने के पश्चात गर्भ में आने में उसके कर्मानुसार यथोचित अधिक समय लगना अपेक्षित है।

२५. जीव को अपने गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार विभिन्न योनियां प्राप्त होती हैं।

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥१॥

मनुस्मृति, १२।४०॥

जो मनुष्य सात्त्विक होते हैं, वे देव अर्थात विद्वान, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य, और जो तमोगुण युक्त होते हैं, वे नीच गति को प्राप्त होते हैं।

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः॥२॥

मनुस्मृति, १२।४२॥

जो अत्यन्त तमोगुणी हैं, वे स्थावर वृक्षादि कृमि, कीट, मत्स्य, सर्प, कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं॥

अ:- स्थावर वृक्षादि एवम् हरित शाक पातादि को काटने पर जीव को पीड़ा नहीं पहुँचती है। जैसे सुषुप्त अवस्था में जीव को बाह्य जगत का ज्ञान और सुख दुःख की प्राप्ति नहीं प्राप्त नहीं होता, परन्तु उन वृक्ष काटने से उनके द्वारा जो जगत का उपकार होता है वह रुक जाता है।

आ:- पञ्चावयव योगात् सुख संवित्ति॥

सांख्यदर्शन, ५।२७॥

मन के साथ पञ्च ज्ञानेन्द्रियों का सम्पर्क होने पर ही जीव सुख-दुःख अनुभव करता है।

अ:- स्थावर वृक्षादि एवम् हरित शाक पातादि को काटने पर जीव को पीड़ा नहीं पहुँचती है। जैसे सुषुप्त अवस्था में जीव को बाह्य जगत् का ज्ञान और सुख-दुःख की प्राप्ति नहीं होती। इसी भाँति महासुषुप्ति, महानिशा और महाअन्धकार में पड़े स्थावर योनि के जीवों को सुख-दुःख प्राप्त नहीं होता। परन्तु हरे वृक्ष काटने से उनके द्वारा जो जगत का उपकार होता है वह रुक जाता है।

सभी चेतन प्राणियों में जीव प्राणों से संयुक्त रहता है। प्राणों द्वारा ही प्राणी का शरीर गतिमान रहता है।

आ:- पञ्चावयव योगात्सुख संवित्ति॥

सांख्यदर्शन, ५।२७॥

मन के साथ पञ्च ज्ञानेन्द्रियों का सम्पर्क होने पर ही जीव मन के माध्यम से सुख-दुःख अनुभव करता है।

इ:- पञ्च ज्ञानेन्द्रियों का मन के साथ सम्बन्ध न रहने पर भी शरीर में प्राणों का संचार निरन्तर होने के कारण प्राणी का शरीर गतिमान रहता है तथा शारीरिक विकास निरन्तर होता रहता है।

२८. मुक्तावस्था में जीव के पाप-पुण्यों की विद्यमानता।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

ऋग्वेद, १।२४।२॥

हे मनुष्या। वयं यम दिव्यमृतं सर्वेषामस्माकम् पाप-पुण्यानुसारेण फल व्यवस्थापकं जगदीश्वरं देवं निश्चिनुमः। यस्य न्याय व्यवस्थया पुनर्जन्मानि प्राप्नुमो, वयमप्यतमेव देवं पुनर्जन्मदातारं विजानीतेति न चैतदस्माद्भिन्नः कश्चिदपि एतत्कर्म कर्तुं न शक्नोति। अयमेव मुक्तानामपि जीवानां महाकल्पान्ते पुनः पाप-पुण्य तुल्यतया पितरि मातरि च मनुष्यजन्म

कारयनीति च।

हे मनुष्यो! हम लोग जिस अनादि स्वरूप, सदा अमर रहने, जो हम सब लोगों के किये हुए पाप-पुण्यों के अनुसार यथा योग्य फल देने वाले जगदीश्वर देव को निश्चय करते और जिसको न्याय युक्त अवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। तुम लोग भी उसी देव को जानो, किन्तु इससे भिन्न और कोई उक्त कर्म करने वाला नहीं है, ऐसा निश्चय हम लोगों को है, कि वही मोक्ष पदवी को पहुँचे हुए जीवों को महाकल्प के अन्त में फिर पाप-पुण्य की तुल्यता से पिता-माता और स्त्री जीवों में मनुष्य जन्म धारण कराता है।

२६- सृष्टि काल तथा मानवोत्पत्ति काल।

अः- सृष्टि काल।

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः॥

अथर्ववेद ८।२।२१॥

हे मनुष्य! तेरे लिये, सौ, दस, सहस्र, चार, तीन, दो वर्ष क्रमशः करते हैं अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की सृष्टि करते हैं। वायु, अग्नि, तथा समस्त दिव्य पदार्थ तेरे अनुकूल रहें।

सृष्टि काल चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है, तथा इतना ही प्रलय काल है।

हजार चतुर्युगी का सृष्टि काल तथा इतना ही प्रलय-काल है।

सम्वत् २०५८ विक्रमी में श्वेतवाराह कल्प संज्ञक सृष्टि को एक अरब सत्तानवे करोड़ उनतीस लाख तेरह हजार एक सौ एक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यह एक सौ दोवां वर्ष भोग रहा है तथा इस एक सौ दोवें वर्ष सहित दो अरब चौंतीस करोड़ इकसठ लाख छियासी हजार आठ सौ निन्यानवे वर्ष भोगने शेष हैं।

आः- मानवोत्पत्ति एवम् सृष्टि में मानव के विद्यमान रहने का समय।

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥

ऋग्वेद १०।९७।१॥

ये ओषधियां मनुष्योत्पत्ति के तीन दिव्य युग अर्थात् एक करोड़ उन्नीस लाख साठ हजार वर्ष पूर्व उत्पन्न हुई हैं। इन एक सौ सात भरणशीलों को मैं जानता हूँ।

सृष्टि उत्पन्न होने के एक करोड़ उन्नीस लाख साठ हजार वर्ष पश्चात् पश्चिमी त्रिविष्टप (तिब्बत) के मानसरोवर कैलाशपर्वत समन्वय क्षेत्र में मानवोत्पत्ति हुई। सृष्टि समाप्ति अर्थात् प्रलय-आरम्भ के एक करोड़ उन्नीस लाख साठ हजार

पूर्व
वर्ष, मानव समाप्त हो जायगा। मानव की समाप्ति के पश्चात् समस्त प्राणि वर्ग क्रमशः समाप्त हो जायगा। सृष्टि में मानव चार अरब उन्तीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हजार वर्ष विद्यमान रहता है।

इस समय सम्वत् २०५८ विक्रमी में मानवोत्पत्ति को एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार एक सौ एक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं यह एक सौ दोवां वर्ष भोग रहा है। इस एक सौ दोवें वर्ष सहित सृष्टि में मानव के विद्यमान रहने के दो अरब तैंतीस करोड़ बत्तीस लाख सत्ताइस हजार आठ सौ इक्यावन वर्ष भोगने शेष हैं।

२७:- वेदाविर्भाव एवम् वेदप्रकाशकाल।

मानवोत्पत्ति के पांच वर्ष पश्चात परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा ऋषि को समाधि अवस्था में स्वर तथा अर्थ सहित वेद पढ़ाना आरम्भ किया।

सृष्टि में समग्र वेद प्रकाश काल चार अरब उन्तीस करोड़ चालीस लाख, पचासी हजार नौ सौ छियानवें वर्ष है। सम्वत् दो हजार अट्ठावन विक्रमी में वेदप्रकाश को एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार छियानवे वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यह सत्तानवें वां वर्ष भोग रहा है।

इस सत्तानवे वर्ष सहित वेद प्रकाशकाल के दो अरब तैंतीस करोड़ बत्तीस लाख छब्बीस हजार आठ सौ अट्ठानवें वर्ष भोगने शेष हैं।

२८. वेदों के प्रकाश का प्रयोजन।

मानवोत्पत्ति के पांच वर्ष पश्चात् यदि परमात्मा समाधि अवस्था में ऋषियों को स्वर तथा अर्थ सहित वेद न पढ़ाता, और वे अन्यों को वेद न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान ही रह जाते। वेद सब सत्य विद्याओं का मूल है तथा अभ्युदय (लौकोन्नति) और निःश्रेयस (दुःखों से छूटकर मोक्ष) मुक्ति प्राप्ति का आधार है।

२९. प्रलय।

प्रलय के एक करोड़ उन्तीस लाख साठ हजार वर्ष पूर्व, मानव के समाप्त होने के पश्चात समस्त प्राणी क्रमशः समाप्त हो जायेंगे। प्राणियों की समाप्ति के पश्चात जगत् विखण्डित होकर परमाणु रूप में रह जायगा। उस समय:

~~तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।~~
~~तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥~~

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥
ऋग्वेद, १०।१२९।३॥

अवस्था में घोर अन्धकारपूर्ण प्रकृति थी। यह सब अज्ञेय रूप में स्थित, प्रवाह रूप में था। जड़ शून्यता से यह व्यापक प्रकृति ढकी हुई थी तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण रूप प्रकृति से कार्य रूप जगत बना दिया।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वम्॥

यह सब जगत सृष्टि के पूर्व प्रलय में अन्धकार से आवृत था और प्रलयारम्भ के पश्चात भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था और न होगा।

उस समय समस्त बद्ध जीव सुषुप्त अवस्था में निष्क्रिय रहते हैं। मुक्त जीव ब्रह्म में सर्वत्र स्वच्छन्द घूमता हुआ सृष्टि रचना और प्रलय को देखता है।

२०. मुक्ति में जीव में वासनाओं का अभाव नहीं होता।

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्॥
योगदर्शन, ४।१०॥

आत्म कल्याण की कामना रहने के कारण वासनायें प्रवाह से अनादि हैं।

मुक्ति में भी मुक्त जीव विषय सुख व आनन्द

की कामना करता है। विषय सुख की कामना का कारण अविद्या है। मुक्तावस्था में जीव के पूर्ण विवेक सम्पन्न होने पर भी अविद्या "तनु" अवस्था में विद्यमान रहती है। इसका कारण जीव की अल्पज्ञता है।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः॥
योग दर्शन, २।१२॥

वर्तमान और भावी जन्मों में अनुभव करने योग्य कर्म और वासनाओं का मूल अविद्या है। अविद्यादि क्लेश हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥ योगदर्शन, २।१३॥

अविद्यादि क्लेश रूप मूल के रहते हुए, उसका फल जन्म (जाति), आयु और भोग के रूप में होता रहता है।

मुक्ति से जीव की पुनरावृत्ति का कारण कर्माशय की विद्यमानता ही है।

२१. जीव का मुक्ति में निर्बाध सुख और आनन्द भोगने का समय।

जीव मुक्ति में इकत्तीस नील, दस खरब, चालीस अरब वर्ष (३११०४००००००००००) पर्यन्त निर्बाध रूप से सुख और आनन्द भोगता है। इस अवधि में इकत्तीस हजार बार सृष्टि और प्रलय हो जाती है। छत्तीस हजार बार

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले, परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥
मुण्डकोपनिषद् ३।२।६॥

वेदान्त शास्त्र के सम्यक् ज्ञान रूप के द्वारा जिसने उसके अर्थ (लक्ष्य) को जान लिया है, संन्यास तथा योगाभ्यास से शुद्ध अन्तःकरण से युक्त ऐसे लोग मृत्यु के पश्चात् परान्तकाल पर्यन्त ब्रह्मलोक में सुख तथा आनन्द भोगकर लौटकर जन्म लेता है।

अः- ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, अतः मुक्त जीव अबाध रूप से सर्वत्र विचरण करता हुआ ब्रह्म के आनन्द और सुख को भोगता है। उस समय अविद्या नष्ट अवस्था में रहती है। मुक्ति में जीव का भौतिक शरीर नहीं होता। संस्कारों की प्रबलता से विषयों के भोगने की इच्छा होने पर जीव स्वशक्ति से विषयों को भोगता है। जीव के गुण रूप जो अभौतिक स्वाभाविक सूक्ष्म शरीर है, वह मुक्ति में भी रहता है, इसी से जीव मुक्ति में सुख और ब्रह्म के आनन्द को भोगता है। उसको सांसारिक सुख-दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

अः- जैसे जीव सांसारिक सुख भौतिक शरीर के आधार से भोगता है, वैसे ही परमेश्वर के आधार से जीवात्मा मुक्ति में सुख और आनन्द को भोगता है। मुक्त जीव सर्वत्र व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता,

शुद्ध शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्त जीवों से मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से देखता हुआ, सब लोक लोकान्तरों में अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और जो नहीं दीखते उन सब में घूमता है। वह सब पदार्थों को जो कि उसके ज्ञान के आगे हैं देखता है। जिसका जितना ज्ञान अधिक होता है, उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से सर्वज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का ज्ञान यथावत् होता है। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।

मुक्त जीव संकल्प मात्र से ही दिव्य शरीर रच लेता है और इच्छा मात्र से ही शीघ्र छोड़ भी देता है।

३२. जीव की मलिनता और पवित्रता।

अः- सब जीव एक से हैं, परन्तु पाप-पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

अः- इसी से सब जीवों को चाहिये कि मनुष्यों को उचित है कि वैदिक पुण्य रूप कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने सन्तानों का निषेकादि संस्कार करें, जो इस जन्म वा पर जन्म में पवित्र करने वाला है। इसी प्रकार जीव तथा संसार के सब पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से, परमात्मा से तीनों कालों में भिन्न और स्वरूप भिन्न होने से एक कभी नहीं होते।

अव्यय, नित्य तथा सनातन होने के कारण मुक्ति में जीव का ईश्वर में विलय नहीं होता। ईश्वर और जीव दोनों, चेतन स्वरूप, नित्य तथा सनातन ~~होने~~ ~~के कारण~~ और अव्यय हैं। जीव और ईश्वर का व्याप्य-व्यापक का सम्बन्ध है, अंश-अंशी का नहीं।

ड:- जैसे वस्त्र में पीछे से लगे मैल को धोने से छुड़ा देते हैं, उसके स्वाभाविक श्वेत वर्ण को नहीं छुड़ा सकते। मैल फिर भी वस्त्र में लग जाता है, इसी प्रकार मुक्ति में भी लगेगा। क्योंकि भौतिक शरीर के अभाव में तपादि साधन नहीं कर सकता है।

ई:- जीव इन्द्रियों के वश में होकर जड़-जड़ दोषों को प्राप्त होता है, और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है, तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।

उ:- शुद्धि।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥
मनुस्मृति, ५।१०९॥

जल से शरीर, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट सहकर भी धर्म के अनुष्ठान करने से जीवात्मा का ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि, दृढ़ निश्चय और पवित्र होना।

२३. योग के अङ्गों के अनुष्ठान का फल।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥
योगदर्शन, २।२८॥

तपादि योग के अङ्गों के अनुष्ठान से, अशुद्धि के क्षीण होने पर ज्ञान का प्रकाश निरन्तर बढ़ कर विवेक सम्पन्न होने तक निरन्तर बढ़ता जाता है।

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥
सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास, ३॥

प्राणायाम के अभ्यास से अशुद्धि के क्षीण होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेक सम्पन्न होने तक निरन्तर बढ़ता जाता है।

अ:- सृष्टि उत्पत्ति के एक करोड़ छन्नीस लाख आठ हजार वर्ष पश्चात् पश्चिमी त्रिविष्टप के मानसरोवर क्षेत्र के समीपस्थ "मनस्तर" स्थान में, "साध्या ऋषयश्च ये" (यजुर्वेद ३१ ९) "मनुष्या ऋषयश्च ये" (काण्व शाखीय, शतपथ ब्राह्मण) मनुष्य तथा ऋषि उत्पन्न हुए। अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा, पूर्व सृष्टि के "विदेह तथा प्रकृतिलय" कोटि के विभूति सम्पन्न योगी प्रथम ऋषि थे, जिन पर वेदों का प्रकाश हुआ। ये "भव प्रत्यय" (आयुकाल) समाप्त होते ही प्रथम जन्म में ही मुक्त हो गये।

आ:- ओ३म् के जप से समाधि की प्राप्ति।

प्रणव अर्थात् ओ३म् के अर्थ पूर्वक निरन्तर

मानसिक जप करने से, अन्तःकरण की पवित्रता चित्त की स्थिरता तथा समाधि सम्पन्न होती है।

३३. जीव को अपना और परमात्मा का प्रत्यक्ष।

प्राणायाम के अभ्यास से अन्तःकरण के शुद्ध होने पर जब जीव अपने अन्तःकरण में परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं।

जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर का ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है।

३४:- उस अनादि परमात्मा को देखने का साधन।

उस अनादि परमात्मा को देखने का साधन, शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्यास से पवित्रात्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है।

३५. बन्ध और मोक्ष स्वाभाविक है वा नैमित्तिक? नैमित्तिक, जो स्वाभाविक होता तो बन्ध और मोक्ष की निवृत्ति कभी नहीं होती। निमित्त के विद्यमान रहने तक ही जीव बद्ध रहता है। निमित्त के समाप्त होते ही जीव की बद्धता समाप्त हो जाती है, इसी भाँति निमित्त के समाप्त होते ही मुक्ति भी समाप्त हो जाती है। बन्ध और मोक्ष प्रवाह से अनादि होने के कारण नैमित्तिक हैं।

नित्य, शाश्वत, अनादि और सनातन सम्बन्ध तो ईश्वर और जीव का ही है। ~~परन्तु जीव ईश्वरको~~ -

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥

अथर्व वेद १०।८।३२॥

ईश्वर जीव को कभी नहीं त्यागता। जीव ईश्वर को कभी नहीं देखता। परमात्मा के संसार रूपी काव्य को देखो, जो न मरता है और न जीर्ण होता है।

३६. बन्ध और मोक्ष किन-किन बातों से होता है?

ईश्वर आज्ञा भंग करने, अविद्याग्रस्त रहने, पापाचरण करने और विषयों में आसक्त रहने से दुःख और बन्ध होता है।

परमेश्वर की आज्ञा पालन करने अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, दुर्गुण तथा दुर्व्यसनों से पृथक् रहने, सत्यभाषण परोपकार, विद्या, पक्षपात रहित न्याय धर्म की वृद्धि करने, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने अर्थात योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सर्वोत्तम साधनों को करने और जो करे वह पक्षपात रहित न्यायधर्मानुसार करने इत्यादि साधनों से मोक्ष होता है।

ॐ. मुक्ति के साधन।

जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त, जिन मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़, सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे, वह अधर्म को छोड़, धर्म का आचरण अवश्य करे, क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

सत्पुरुष सत्पुरुषों के सङ्ग से विवेक अर्थात सत्यासत्य, धर्माधर्म तथा कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय अवश्य करे।

पृथक्-पृथक् शरीर, जीवात्मा तथा पञ्च कोशों का विवेचन करे। जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति आदि अवस्थाओं को भली भांति जाने।

एक स्थूल शरीर जो यह दीखता है, दूसरा सूक्ष्म शरीर, पांच प्राण, प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान, पांच सूक्ष्म भूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना तथा त्वचा, मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म-मरणादि में भी जीव के साथ रहता है। सृष्टि रचना के समय जीव को मिला सूक्ष्म शरीर प्रलय होने के पूर्व तक अथवा जीव के मुक्त होने से पूर्व तक रहता

है।

सूक्ष्म शरीर के दो भेद हैं। एक भौतिक जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है, दूसरा स्वाभाविक जो जीव के गुण रूप है। यह दूसरा अभौतिक सूक्ष्म शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख और आनन्द को भोगता है।

तीसरा कारण शरीर, जिसमें गाढ़ निद्रा होती है। यह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु है और सब जीवों के लिये एक है।

चौथा तुरीय शरीर है जिसमें समाधि अवस्था में परमात्मा के जीव परमात्मा के आनन्द में निमग्न होते हैं। इसी समाधि जन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत सहायक रहता है।

चार अवस्थायें, एक जाग्रत जिसमें जीवात्मा स्थूल जगत को भोगता है। दूसरी स्वप्नावस्था, जो जाग्रत अवस्था में सत्य पदार्थ हैं, उनके साक्षात सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात वासना रूप ज्ञान आत्मा व अन्तःकरण में स्थित होता है, उसी को सूक्ष्म शरीरस्थ अन्तःकरण में स्वप्नावस्था में जीव देखता है। तीसरी सुषुप्ति अवस्था जिसमें कारण शरीर के आश्रय से प्रगाढ़ निद्रा होती है। चौथी समाधि अवस्था जिसमें तुरीय शरीर के माध्यम से जाग्रत से

जीव परमात्मा के आनन्द में निमग्न होते हैं।

पांच कोश हैं, एक "अन्नमय कोश" जो त्वचा से लेकर अस्थि पर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। दूसरा "प्राणमय कोश" जिसमें "प्राण" जो बाहर से भीतर आता, "अपान" जो भीतर से बाहर जाता, "व्यान" जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। "समान" जो नाभिस्थ होकर शरीर में सर्वत्र रस पहुँचाता है। "उदान" जिससे कण्ठस्थ अन्नपान खैंचा जाता है और बल तथा पराक्रम होता है।

तीसरा "मनोमय कोश" जिसमें मन के साथ अहङ्कार, वाक, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ रूप पांच कर्मेन्द्रियां हैं। चौथा "विज्ञानमय कोश" जिसमें, बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना और त्वचा हैं। जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पांचवा "आनन्दमय कोश" जिसमें प्रीति प्रसन्नता न्यूनानन्द, अधिकानन्द, आनन्द और आधार कारण रूप प्रकृति है। ये पांच कोश हैं, इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

अ:- साधन।

"विवेक" से पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण कर्म और स्वभाव को जानकर परमेश्वर

की आज्ञा पालन और उसकी उपासना में तत्पर होना, उसकी आज्ञा के विरुद्ध न चलना, उसकी सृष्टि से उपकार लेना "विवेक" है।

"वैराग्य" जो विवेक से सत्यासत्य को जाना हो, उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग "वैराग्य" है।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्॥ योग दर्शन, १।१५॥

देखे और सुने हुए विषय के प्रति अनासक्त चित्त की वशीकार स्थिति वैराग्य है।

षट्क सम्पत्ति अर्थात् छः प्रकार के कर्म करना।

"शम" जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रखना।

"दम" श्रोत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना।

"श्रद्धा" वेदादि सत्य शास्त्र और इनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान्, सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना।

"उपरति" दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहना।

"तितिक्षा" चाहे निन्दा स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोक को छोड़, मुक्ति के साधनों में लगे रहना।

समाधान- चित्त की एकाग्रता।

ये छः साधन मिलकर "षट् सम्पत्ति" रूप साधन कहाता है।

ग:- मुमुक्षुत्व।

"मुमुक्षुत्व" जैसे क्षुधातुर को अन्न जल के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वैसे बिना मुक्ति के साधन और मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना।

ङ- अनुबन्ध।

ये सब साधन और चार अनुबन्ध अर्थात् साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते हैं। इनमें से जो इन चार साधनों से युक्त पुरुष होता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है। दूसरा "सम्बन्ध" ब्रह्म की प्राप्ति रूप "मुक्ति" प्रतिपाद्य और वेदादि शास्त्र प्रतिपादक को यथावत् जान-कर अन्वित करना। तीसरा "विषयी", सब शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित विषय "ब्रह्म" उसकी प्राप्ति रूप विषय वाले पुरुष का नाम "विषयी" है। चौथा "प्रयोजन" सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द को प्राप्त होकर मुक्ति रूप सुख का होना ये चार "अनुबन्ध" कहाते हैं।

च- श्रवण चतुष्टय।

तदनन्तर श्रवण चतुष्टय एक "श्रवण" जब कोई विद्वान उपदेश करे तब शान्त रह ध्यान देकर सुने सुनना, विशेषकर ब्रह्म विद्या के सुनने में अत्यन्त ध्यान देकर देना चाहिए। यह सब विद्याओं में सूक्ष्म

विद्या है।

दूसरा "मनन" एकान्त देश में बैठके सुने हुये का विचार करना। जिस विषय में शङ्का हो पुनः पूछना और सुनते समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझें तो पूछना और समाधान करना।

तीसरा "निदिध्यासन", जब सुनने और मनन करने से सन्देह रहित हो जाय तब समाधिस्थ होकर उस बात को देखना समझना कि वह जैसा सुना था वा विचारा था वैसा ही है वा नहीं, ध्यान योग से देखना।

चौथा "साक्षात्कार" अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप गुण और स्वभाव हो वैसा याथातथ्य जानना "साक्षात्कार" है। यही श्रवण चतुष्टय है।

छ- ध्यान का न्यूनतम समय।

क:- नित्य प्रति न्यून से न्यून दो घन्टा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान ध्यान अवश्य करे।

ख:- न्यून से न्यून एक घन्टा ध्यान अवश्य करे।

ग:- जो आठ प्रहर में एक घड़ी (चौबीस मिनिट) भर भी इस प्रकार ध्यान करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।

२३. समाधि से भिन्न समय में योगी की चित्त वृत्ति।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ योगदर्शन, १।४॥

समाधि (निरुद्धावस्था) से भिन्न समय में योगी के चित्त की वृत्तियां चित्त के अनुरूप रहती हैं।

जब इन्द्रियां अर्थों (विषयों) में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय अच्छे कर्मों में भीतर से आनन्द, उत्साह व निर्भयता, और बुरे कर्मों में भीतर से भय शङ्का व लज्जा आदि उत्पन्न होती है। यह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल करता है, वही मुक्तिजन्य सुख को प्राप्त होता है और जो इसके विपरीत करता है, वह बन्ध जन्य दुःख भोगता है।

४०. कुण्डलिनी।

अ:- श्वास प्रश्वास के आवागमन से, प्राण का दूर करने के कारण प्राण की स्थूल "कुण्डलिनी" संज्ञा है।

आ:- शरीरस्थ विद्युत् शक्ति की सूक्ष्म कुण्डलिनी संज्ञा है।

४१. षट् चक्र अथवा अष्ट चक्र।

अष्ट चक्रा नवद्वारा, देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः, स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
अथर्ववेद, १०।२।३१॥

सांख्य दर्शन ने "अष्टौ प्रकृतयः" माना है, महाभारतकार ने "प्रकृतेरष्टधा" अर्थात प्रकृति आठ प्रकार की है। सत्व (शुद्ध) रजस् (मध्य) तथा तम (जाड्य), आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा

पृथिवी, इन आठ के संघात रूपी चक्र नव द्वारों तथा इन्द्रिय रूपी देवों से युक्त यह अजेय शरीर है। इसमें दैवी ज्योति (आत्मा) से आवृत ज्योतिर्मय कोश है।

शरीर में इससे भिन्न अन्य प्रकार का कोई चक्र नहीं है।

४२. योगी जनों का व्यवहार।

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावना तश्चित्त प्रसादनम्॥
योगदर्शनम्, १।३३॥

सुखी जनों से मित्रता, दुःखियों पर दया, पुण्यात्माओं से प्रसन्नता तथा दुष्टात्माओं से न प्रीति और न द्वेष रखना।

४३. आत्मा।

"अत" सातत्य गमने से आत्मा निष्पन्न होता है, शब्द निरन्तर गतिशील के लिए है, जो व्यापक न होकर एक देशी हो।

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ कठोपनिषद् १।३।३॥

शरीर रूपी रथ में विद्यमान आत्मा रथी है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम है।

इन्द्रियाणि हयानाहुर् विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ १।३।४॥

कठोपनिषद्, ३।८॥

शरीर रूपी रथ में [illegible] हैं, जिसका ही इन्द्रिय इन्द्रिय रूपी घोड़ों [illegible] का मार्ग है।

आत्मा शब्द [illegible], शरीर और इसके भी के लिये प्रयुक्त होने [illegible] जीवात्मा परक है।

आत्मा इतने बौ, आपे [illegible] पदा, आप्त इव स्यात्, शब्द, व्याप्नोभूत [illegible] ॥ निरुक्त, ३।१५॥

"अत" धातु से [illegible] प्रत्यय से आत्मा शब्द बनता है।

"आप्लृं व्याप्तौ" धातु [illegible] मनिन् प्रत्यय करने पर परमात्मा वाचक "आत्मा" शब्द बनता है।

"आप" धातु से "मन" प्रत्यय करने पर आत्मा शब्द बनता है।

"अव" रक्षणे धातु से "मन्" प्रत्यय करने पर ओ३म् शब्द बनता है, जो अव्यय है।

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥

कठोपनिषद् १।२।२०॥

इस जीवात्मा के अन्दर रहने वाला आत्मा (परमात्मा) सूक्ष्मातिसूक्ष्म और महान से भी महान है। परमात्मा की उस महिमा को कामना तथा

शोक रहित होकर परमात्मा की कृपा से कोई कोई देख पाता है।

व्यापक के लिये आत्मा शब्द प्रयुक्त होने पर आत्मा शब्द का अर्थ परमात्मा होता है।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥

कठोपनिषद् १।३।५॥

जो सदा विवेकहीन बुद्धि वाला, अवशीभूत मन से युक्त रहता है उसकी इन्द्रियाँ असावधान सारथि के दुष्ट घोड़ों की भांति वश में न रहने वाली हो जाती हैं।

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥

कठोपनिषद् १।३।६॥

जो सदा विवेक युक्त बुद्धिवाला, वश में किये हुये मन से युक्त रहता है, उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथि के अच्छे घोड़ों की भांति वश में रहती हैं।

अः- अन्तः करण।

मन, बुद्धि, चित्त तथा अहङ्कार अन्तः करण है। मन से संकल्प, बुद्धि से निश्चय, चित्त से स्मरण तथा अहङ्कार से अभिमान होता है।

४६. परमात्मा को ठीक से जानने वाला ही परमात्मा को प्राप्त होता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः

परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय॥ यजुर्वेद, ३१।१८॥
अविद्या रूप अन्धकार से ~~से~~ रहित स्वयं प्रकाश स्वरूप परमात्मा को मैं जानता हूँ। उसको जान कर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन कर जाता है। परमपद प्राप्ति का इससे भिन्न दूसरा कोई मार्ग नहीं है।
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥
यजुर्वेद, १७।३१॥
हे जीवो! जो परमात्मा इन सब लोकों का उत्पन्न करने वाला है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो। जो तुम्हारे अन्दर बाहर सर्वत्र व्यापक है। इसी से तुम मिथ्याचार रूप नास्तिकता पूर्ण बकवाद करते हो, इससे तुमको दुःख ही मिलेगा सुख नहीं।
६५- आयु।
क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः॥
योगदर्शन, २।१२॥
अविद्यादि क्लेश रूप मूल के विद्यमान रहने तक उसका फल (विपाक) जन्म (जाति) आयु (जीवन) और भोग निरन्तर होता रहता है रहेगा।
वस्तुतः भोग ही आयु है। भोगों के भोगने

जीने का काल भोगों पर निर्भर करता है।
माध्यंदिनीय शतपथ ब्राह्मण में श्वास के प्रमाण से आयु (जीवन) पर प्रकाश डाला है।
माध्यंदिनीय शतपथ ब्राह्मण
१०।३।२।२८।
यह मनुष्य पुरुष दस हजार आठ सौ श्वास प्रमाण वाला है। दिन और रात्रि में इसी भांति श्वास लेता और निकालता है।
इस प्रकार इक्कीस हजार छः सौ श्वास प्रश्वास के हिसाब प्रमाण से एक स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में पन्द्रह ~~श्वास लेता~~ बार श्वास-प्रश्वास लेता ~~है~~ और निकालता है।
भोगासक्त मनुष्य का श्वास प्रमाणाधिक हो जाता है।
क:- आयु का उपयोग।
परेमामे दुश्चरिताद्बाधस्व, सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ऽअनु॥ यजुर्वेद, ४।२८॥
हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! आप दुश्चरित्र प्राणियों को मुझ से दूर कर, सच्चरित्र लोगों का मुझसे सम्बन्ध करावें। मैं यशस्वी लोगों का ~~अनुसरण~~ अनुसरण करके कर अपना जीवन सुखमय बनाऊं।
खः- मा न आयुः प्रमोषीः॥ यजुर्वेद, १२।७२॥

परमात्मन्! मेरी आयु बढ़ाओ।

उ:- स्त्री पुरुषों को ब्रह्मचर्य का नाश, अयोग्य आहार विहार, अत्यन्त विषयासक्ति आदि खोटे कर्मों से आयु का नाश नहीं करना चाहिये।

६८- उपासना।

उपासना से अभीष्ट विषय का साक्षात्कार होना है।

परमात्मा से भिन्न जड़ पदार्थों की उपासना अज्ञानी जन करते हैं, जिसका फल दुःख और अशान्ति है।

अग्नेः ओम् महः ... त्वोपास्महे वयम्॥

अथर्ववेद, ७।४।५०॥

हे भगवन्! आप सबों में व्यापक, शान्तस्वरूप और प्राणों के भी प्राण हैं तथा ज्ञान स्वरूप और ज्ञान के देने वाले हैं। सब के पूज्य, सब से बड़े के बड़े और सब के सहन करने वाले हैं। इस प्रकार आपको जान के हम लोग सदा आपकी उपासना करते हैं।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥ मैत्रायणी उपनिषद्, ६।४।१॥

जिस पुरुष के समाधि योग से अविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं, जिसने आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त को लगाया है, उसको जो सुख होता है, वह वाणी से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा

अन्तःकरण से ग्रहण करता है।

परमेश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के जानने तथा प्राप्त करने का आधार, स्तुति, प्रार्थना और उपासना ही है।

अ:- स्तुति।

गुणेषु गुणारोपणं स्तुतिः दोषेषु दोषारोपणं स्तुतिः॥

गुणों को गुण कहना स्तुति है, दोषों को दोष कहना स्तुति है।

दोषेषु गुणारोपणं असूया, गुणेषु दोषारोपणं च असूया॥

दोषों को गुण कहना निन्दा है, और गुणों को दोष कहना निन्दा है।

प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता मिलना।

उपासना से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

आ:- शब्द ब्रह्म द्वारा ब्रह्म की उपासना का वेदोक्त प्रकार।

ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतं स्मर॥

यजुर्वेद, ४०।१५॥

हे जीव! तू ओ३म् का स्मरण कर, सामर्थ्य के लिये स्मरण कर, अपने किये कर्मों का स्मरण कर।

इ:- शब्द द्वारा ब्रह्म की उपासना का उपनिषदोक्त प्रकार।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

मुण्डकोपनिषद्, २।२।४॥

प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है, और ब्रह्म उसका लक्ष्य है। प्रमाद रहित होकर तन्मयता पूर्वक (प्रणव के उच्चारण द्वारा) लक्ष्य का वेध करे।

६:- शब्द द्वारा ब्रह्म की उपासना का योगदर्शन प्रोक्त प्रकार।

तस्य वाचकः प्रणवः॥ योगदर्शन, १।२७॥

उस ईश्वर का वाचक प्रणव है (ओ३म्) है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्॥ योगदर्शन १।२८॥

इसका (ओ३म्) का जप उसके अर्थ का विचार पूर्वक करें।

७:- प्राण द्वारा ब्रह्म की उपासना का वेदोक्त प्रकार।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

अथर्ववेद, ११।४।१॥

प्राणों को नमस्कार, यह सब जगत जिसके वश में है, जो सब प्राणियों का स्वामी है, जिसमें सब जगत् प्रतिष्ठित है।

८:- प्राणों के कर्षण द्वारा चित्त को स्थिर करने का उपनिषद् प्रोक्त प्रकार।

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।

दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः॥

श्वेताश्वतरोपनिषद, २।९॥

प्राणों को भली भांति पीड़ित करते हुये, प्राणों के क्षीण होने पर नासिका द्वारा प्राणों को बाहर निकाल कर बाहर रोकें। इस प्रकार प्राणों द्वारा दुष्ट घोड़ों की भांति चंचल व असमान/विद्युत प्रमाद रहित होकर मन को स्थिर करें।

अग्निर्यत्राभिमथ्यते, वायुर्यत्राधिरुध्यते।

सोमो यत्रातिरिच्यते, तत्र संजायते मनः॥

श्वेताश्वतरोपनिषद, २।६॥

जहाँ प्राणायाम के द्वारा अग्नि का मंथन किया जाता है, जहाँ वायु रुक जाता है, जहाँ सोम अधिकता से प्रवित होता है। वहाँ मन सम्यक् रूप से स्थिर हो जाता है।

९:- चित्त की स्थिरता का साधन।

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य॥ योगदर्शन, १।३४॥

प्राणों को यथावत् बाहर निकाल कर बाहर रोकने से चित्त स्थिर होता है।

४८. योगदर्शन प्रोक्त उपासना।

योग दर्शन में चार पाद (अध्याय) हैं।

१. समाधि पाद।

आनन्द तथा मोक्ष की प्राप्ति समाधि से होती है, समाधि के विवेचन से युक्त समाधि पाद है।

२. साधन पाद।

साधन करने से समाधि सम्पन्न होती है। साधन के विवेचन से युक्त साधन पाद है।

३. विभूतिपाद।

साधन के अनुष्ठान से विभूतियां उत्पन्न होती हैं। संयम जय ही विभूति प्राप्ति का प्रवेश द्वार है। विभूतियों का विवेचन विभूति पाद में है।

४. कैवल्य पाद।
विभूतियों की पराकाष्ठा कैवल्य है। कैवल्य प्राप्ति के विवेचन से युक्त कैवल्य पाद है।
क:- योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ योग दर्शन, १।२॥
चित्त की वृत्ति को रोकना योग है।
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥ योगदर्शन, १।३॥
उस समय द्रष्टा (जीवात्मा) अपने स्वरूप में स्थित होता है।

वैराग्य अर्थात् विषयों के प्रति विरक्ति तथा श्रद्धा सहित दीर्घ काल पर्यन्त निरन्तर अभ्यास करने से चित्त वृत्ति स्थिर करने की स्थिति हो जाती है।

साधन की दृष्टि से योग के प्रकार।

१. विराम प्रत्यय।
विराम प्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः॥
योगदर्शन, १।१८॥
वृत्ति निरोध के कारण, वैराग्य के अभ्यास से संस्कार शेष रहने रूप चित्त की स्थिरता, विराम प्रत्यय है।

२. भव प्रत्यय।
भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्॥
योगदर्शनम्, १।१९॥
विदेह तथा प्रकृति लय कोटि के योगियों में,

संसार का राग बना रहता है। यही "भव प्रत्यय" है।

३. उपाय प्रत्यय।
श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम्॥
योगदर्शन, १।२०॥
अन्य, श्रद्धा, वीर्य, समाधि स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा द्वारा योग को प्राप्त होते हैं।
तीव्र संवेगानामासन्नः॥ योगदर्शन, १।२१॥
यह योग तीव्र संवेग (ध्यान) वालों को शीघ्र सम्पन्न होता है।
स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ योगदर्शन, १।२६॥
कालातीत होने के कारण वह ईश्वर पूर्वोत्पन्न ऋषियों का भी गुरु है।

६:- उपासना में व्यवधान।
व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्ते अन्तरायाः॥ योगदर्शन, १।३०॥
व्याधि (शारीरिक रोग), साधन करने में अरुचि, सफलता में सन्देह, साधन की उपेक्षा, चित्त का भारीपन, वैराग्य का अभाव, विपरीत ज्ञान, योग की भूमियों का प्राप्त न होना, तथा चित्त की अस्थिरता ये उपासना में विक्षेप रूप से अन्तराय हैं।
दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप सहभुवः॥ योग दर्शन, १।३१॥

दुःख, मानसिक क्षोभ, शारीरिक अस्थिरता, तथा श्वास प्रश्वास, ये विक्षेप रूप विघ्न अन्तरायों के साथ उत्पन्न होते हैं।

तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः॥

योगदर्शन, २।१॥

तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग है।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः॥ योगदर्शन, २।४३।

तप (प्राणायाम) के अभ्यास से शरीर तथा इन्द्रियों की अशुद्धि दूर होकर, शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि सम्पन्न होती है।

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः॥ योगदर्शन २।४४॥

स्वाध्याय से अभीष्ट विषय का साक्षात्कार होता है।

समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्॥ योगदर्शन २।४५

ईश्वर प्रणिधान (समर्पण) से समाधि की सिद्धि होती है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म, प्राणायामाः परं तपः।

सावित्र्यास्तु परं नास्ति, मौनात् सत्यं विशिष्यते॥

मनुस्मृति, २।८३॥

एक अक्षर "ओ३म्" ही परं ब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है। सावित्री से परे मन्त्र नहीं है, मौन रहने से सत्यभाषण श्रेष्ठ है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

मनुस्मृति, ६।७१॥

जिस प्रकार प्रज्वलित भट्ठी में धातुओं को डालने पर उनका मल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण का मल नष्ट हो जाता है।

पतञ्जलि मुनि प्रोक्त प्राणायाम चार प्रकार का है।

१. बाह्य वृत्ति प्राणायाम।

मूलाकुञ्चन पूर्वक श्वास को यथाशक्ति बलपूर्वक बाहर निकाल कर यथा शक्ति बाहर रोकना। जब बाहर न ठहर सके तब श्वास अन्दर लेकर पुनः इसी भाँति बलपूर्वक बाहर निकालकर पूर्ववत बाहर रोके।

यह बाह्यवृत्ति प्राणायाम यथा सामर्थ्य जितनी इच्छा हो अधिक से अधिक करना चाहिये।

बाह्य वृत्ति प्राणायाम के करने से शरीर इन्द्रियाँ व अन्तःकरण पवित्र होकर चित्त स्थिर हो जाता है।

२. आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम।

मूलाकुञ्चन पूर्वक श्वास को अन्दर लेकर यथा शक्ति अन्दर रोकना। जब अन्दर न ठहर सके, तब अत्यन्त मन्द गति से बाहर निकालना। पुनः पुनः यथा सामर्थ्य तथा इच्छानुसार इसी भाँति करना। इससे बल की वृद्धि होती है।

३. स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम।

श्वास को लेते समय यथा शक्ति वहीं रोकना तथा बाहर निकालते समय पुनः उसी भाँति रोकना।

इससे चित्त स्थिर होता है।

४. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी प्राणायाम।

मूलाकुञ्चन पूर्वक श्वास को बाहर निकालने के बाद मौन में रुककर उठने पर श्वास को अन्दर लेते हुए भरकर आक्षेपण करना।

इससे प्राणों पर अधिकार होकर, प्राणायाम पूर्वक चित्त की स्थिरता सम्पन्न होकर समाधि सम्पन्न होती है।

४८. प्राणायाम का फल।

अ:- तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।। योगदर्शन, २।४९।।

आसन के स्थिर होने पर श्वास-प्रश्वास की गति का विच्छेद प्राणायाम है।

आ:- ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।। योगदर्शन, २।५२।।

प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है।

इ:- धारणासु च योग्यता मनसः।। योगदर्शन, २।५३।।

धारणा की योग्यता उत्पन्न हो जाती है।

ई:- तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।। योगदर्शन, ३।२।।

जहाँ चित्त स्थिर हुआ हो, वहीं चित्त की स्थिरता को निरन्तर स्थिर रखना ध्यान है।

उ:- तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।। योगदर्शन, ३।३।।

ध्यान की अवस्था में ध्याता के अपने स्वरूप को विस्मृत होकर ध्येय की प्रतीति रहना समाधि है।

ऊ:- त्रयमेकत्र संयमः।। योगदर्शन, ३।४।।

एक विषय में धारणा, ध्यान तथा समाधि का एक समय में एक साथ सम्पन्न होना संयम है।

संयम ही विभूतियों का द्वार है। इस साधना से, साधक ही विभिन्न विषयों को जान सकता है। संयम सहित जप (प्राणायाम) करने से अन्तःकरण के शुद्ध होने पर संयम पर अधिकार हो जाता है।

ए:- तज्जयात् प्रज्ञालोकः।। योगदर्शन, ३।५।।

संयम पर अधिकार प्राप्त होने से पर बुद्धि में प्रकाश हो जाता है।

४९.- योग दर्शन के मत में मोक्ष।

अ:- तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।।

योगदर्शन, २।२५।।

पुरुष और बुद्धि का पार्थक्य ही द्रष्टा (पुरुष) का कैवल्य है।

स्वामी (जीवात्मा) और स्वशक्ति (बुद्धि) के संयोग का हेतु मोह है, इसका कारण अविद्या है। पुरुष और बुद्धि का पार्थक्य रूपी हान ही द्रष्टा का कैवल्य है।

आ:- सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्।।

योगदर्शन, ३।५५।।

अन्तःकरण तथा पुरुष का अविद्यादि क्लेशों से

शोषित होना तथा स्वच्छ होना कैवल्य है।

सू:- पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यम् स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति॥ योगदर्शन, ४।३४॥

जिन गुणों की प्राप्ति में पुरुषार्थों की समाप्ति हो जाय व्याहत गति से उन गुणों के नाश को मोक्ष कहते हैं. द्रष्टा की स्वरूप में स्थिति अथवा ज्ञान में स्थिति मोक्ष है।

५०. सुख-दुःख तथा राग द्वेष।

अ:- अनुकूल वेदनीयं सुखं॥

अनुकूल होने वाला ?

अनुकूल अनुभव होने वाला सुख है।

आ:- प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्॥

प्रतिकूल प्रतीत हो अनुभव होने वाला दुःख है।

इ:- सुखानुशयी रागः॥ योगदर्शन, २।७॥

सुख से उत्पन्न आकांक्षा राग है।

ई:- दुःखानुशयी द्वेषः॥ योगदर्शन, २।८॥

दुःख से उत्पन्न विरक्ति द्वेष है।

५१. स्मृति।

५१. अनुभूत विषयासम्प्रमोषः स्मृतिः॥

योगदर्शन, १।११॥

अनुभव किये हुए विषयों का चित्त से विस्मृत न होना स्मृति है।

दृष्टादृष्ट विषयों में उत्पन्न हुआ चित्त भावितस्मर्तव्या तथा अभावित स्मर्तव्या भेद से अर्थात् विद्यमान

पदार्थों के स्मरण करने योग्य और अविद्यमान पदार्थों के स्मरण करने योग्य भेद से स्वप्नावस्था में जो जाग्रत अवस्था के देखे पदार्थों का जो स्मरण होता है वह भावित स्मर्तव्या स्मृति कहलाती है। जाग्रत अवस्था में जो स्वप्नावस्था के पदार्थों की स्मृति होती है वह अभावित स्मर्तव्या स्मृति कहलाती है

दृष्टादृष्ट संस्कारात् स्मृतिर्जायते॥

दृष्ट अर्थात् वर्तमान और अदृष्ट अर्थात् पूर्व जन्मों के संस्कारों से स्मृति उत्पन्न होती है।

संस्कारों से मन और आत्मा के प्रभावित होने से स्वभाव बनता है। स्वभाव से गुण और कर्म अनुप्रेरित होते हैं।

५२. ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रज्ञानं ब्रह्म आदि वाक्यों पर विवेचन।

अ:- प्रज्ञानं ब्रह्म।

ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप है।

आ:- अहं ब्रह्मास्मि।

मैं ब्रह्म हूँ।

अल्प, अल्पज्ञ तथा एकदेशी जीव ब्रह्म है, नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्म, अनन्त, सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक है।

इ:- तत्त्वमसि।

हे जीव! तू ब्रह्म है।

यह वाक्य कहना मिथ्या है। अल्प, अल्पज्ञ तथा

एक देशी जो कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। ब्रह्म सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक है।

ई:- अयमात्मा ब्रह्म।

यह आत्मा ब्रह्म है।

"अत" सातत्यगमने से बना आत्मा शब्द गमनशील, न रुकने वाले के लिये प्रयुक्त होने पर इसका अर्थ जीवात्मा होता है। व्यापक के लिये प्रयुक्त होने पर इसका अर्थ परमात्मा होता है।

जीव को ब्रह्म मानना अज्ञान है।

५३. स्वप्न।

उपरतेन्द्रियग्रामस्य प्रलीनमनस्कस्येन्द्रियद्वारेणैव यदनुभवनं मानसं तत्स्वप्नज्ञानम्॥

वैशेषिकदर्शन, प्रशस्तपादभाष्य ९।२।७॥
प्रशस्तपादभाष्य २७॥

ज्ञानेन्द्रियों के व्यापार से रहित, ज्ञानेन्द्रियों युक्त, जब मन जीवात्मा प्रदेश में स्थित हो जाता है, उस अवस्था में बाह्य इन्द्रियों के प्रत्यक्ष के समान जीवात्मा मन व जीवात्मा की मन के संयोग विशेष से जो अनुभूति है उसे स्वप्न ज्ञान कहते हैं।

तत्तु त्रिविधम्:

संस्कारपाटवात्, धातुदोषात्, अदृष्टाच्च।

स्वप्न तीन प्रकार के होते हैं।

१. संस्कार की पटुता से।

कामी क्रुद्धो वा यदा यमर्थमादृतश्चिन्तयन् स्वपिति तदा तमेव चिन्तासन्ततिः प्रत्यक्षाकारा सञ्जायते॥

कामी अथवा क्रोधी पुरुष, जिस विषय का अधिकता से चिन्तन करता हुआ सोता है, उस स्वप्न में वही प्रत्यक्ष हो जाता है।

२. धातु दोष से।

अ:- वातप्रकृतिस्तद्दूषितो वा आकाशगमनादीन् पश्यति।

जो पुरुष वात प्रकृति का होता है अथवा वायु प्रकुपित हो जाता है, वह स्वप्न में आकाश गमनादि को देखता है।

आ:- पित्तप्रकृतिः पित्तदूषितो वा अग्निप्रवेशकनकपर्वतादीन् पश्यति।

जिसके शरीर में पित्त प्रकुपित होता है, वह अग्नि में प्रवेश वा स्वर्ण पर्वतादि देखता है।

इ:- श्लेष्मप्रकृतिः श्लेष्मदूषितो वा, सरित्समुद्रप्रतरण हिमपर्वतादीन् पश्यति।

जो कफ प्रकृति का पुरुष होता है, अथवा जिसके शरीर में कफ प्रकुपित हो जाता है वह नदी वा समुद्रादि में तैरने वा हिमाच्छादित पर्वतों को देखता है।

३. अदृष्टजन्य।

यत्स्वयमनुभूतेष्वननुभूतेषु वा प्रसिद्धार्थेषु वा यच्छुभावेदकं गजारोहणच्छत्रलाभादि तत्सर्वं संस्कारधर्माभ्यां भवति, विपरीतं च तैलाभ्यञ्जन खरोष्ट्रारोहणादि तत्सर्वमधर्मसंस्काराभ्यां भवति॥

जो स्वयं अनुभव प्राप्त अथवा अप्राप्त तथा इस जन्म में जाने हुए अथवा न जाने हुए में जो सभी पर चढ़ना, छत्र धारण करना आदि स्वप्न धर्मजन्य होते हैं। इसके विपरीत जो तेल में स्नान, गधे पर चढ़नादि सब अधर्म जन्य होते हैं।

५४. वेद की शाखाओं एवम् कल्प ग्रन्थों का रचना काल।

अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा आदि ऋषि हैं मन्त्रों के ऊपर लिखित तात्कालिक ऋषि हैं, जो "नूतन" ऋषि हैं तथा वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के ही हैं। वेदों की विद्यमान एवम् कतिपय लुप्त शाखायें सभी वैवस्वत मन्वन्तर की रचनायें हैं। कल्प ग्रन्थ (सूत्र) सूत्रादि ग्रन्थ भी वैवस्वत मन्वन्तर की ही रचनायें हैं।

५५. ऋग्वेदादि का के, सृष्टि के आरम्भ में आविर्भाव का पृथक पृथक हेतु।

ऋग्वेद में समस्त पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है।

यजुर्वेद में जाने हुये विविध पदार्थों के गुणों को जानकर, क्रिया व अनेक भांति उपकृत होने की व्यवस्था है।

सामवेद से ज्ञान तथा क्रिया-रूपक दीर्घ

विचार से उनकी पूर्ति व रक्षा कर उन्नति को प्राप्त होवे।

सामवेद से जाने हुये पदार्थों के ज्ञान, तद्विषयक क्रिया परक दीर्घ विचार से उसके फल से आनन्दित होना।

अथर्ववेद से जो तीनों वेदों में विद्या और उसका फल है उसके दीर्घ विचार से उसकी पूर्ति व रक्षा कर उन्नति को प्राप्त होना।

~~ऋग्वेद विद् अध्वर्यु, यजुर्वेद विद् होता, सामवेद विद् उद्गाता तथा अथर्ववेद विद् ब्रह्मा होवे।~~

ऋग्वेद विद् होता, यजुर्वेद विद् अध्वर्यु, सामवेद विद् उद्गाता तथा अथर्ववेद अथवा चतुर्वेद विद् ब्रह्मा होता है। होता का आसन पश्चिम में पूर्वाभिमुख होता है। अध्वर्यु का उत्तर में आसन, दक्षिणाभिमुख होता है। उद्गाता का पूर्व में आसन, पश्चिमाभिमुख होता है। ब्रह्मा का आसन दक्षिण में उत्तराभिमुख होता है।

दक्षिणा का आधा भाग ब्रह्मा का तथा आधा भाग अध्वर्यु, होता तथा उद्गाता का होता है।

५६. फिर ~~[illegible]~~ के निरोध के सांख्य के मतानुसार साधन।

"ध्यान धारणाभ्यास वैराग्यादिभिस्तन्निरोधः"

सां॰ द॰ ३।२९ ॥

"ध्यान धारणा" के अभ्यास तथा वैराग्य से चित्त का निरोध होता है।

ध्यान तथा धारणा अभ्यास है तथा अन्य विषयों के प्रति उपरामता ही वैराग्य है, इनसे क्रम से ही समाधि सम्पन्न होती है।

५७- प्राण।

प्र+ अण+ अच् = प्राण। श्वास प्रश्वासे। अण धातु दिवादि गण। वा अन धातु अदादि गण।

प्र+ अन + अच = प्राण. प्राणने।

५८. हठ योग में "बस्ति" उसे कहते हैं कि गुदा के रास्ते से पानी चढ़ाकर सफाई करना। टकटकी लगाकर इस तरह देखने को कि जिसमें पलक न झपके "त्राटक" कहते हैं। नासिका में सूत डालकर मुख से निकालने को "नेति" कहते हैं। मलमल का चार अंगुल चौड़ा २१ से लेकर अस्सी हाथ पर्यन्त तक लम्बा कपड़ा मुख के रास्ते पेट में डालकर फिर बाहर निकालने "धौती" कहते हैं। यह अजीब बाजीगरों का खेल है। इनसे क्या मुक्ति मुक्ति पाकर योग प्राप्त क्या कर सकते हो? यह सब रोग ही लाने। इन कामों से बीमारियाँ पैदा होती हैं।"

५९. "स्थिर सुखमासनम्"।

यह आसन का लक्षण है कहा है। आसन वही है जिसमें सुख से बैठकर ईश्वर में योग हो सके तो फिर मेरे लोगों का यह कहना कि चौरासी आसनों वाला भानमती का तमाशा ठीक है, कैसे मान लिया जावे।"

६०. "इसी तरह प्राणायाम विषय में तमाशा बना रखा है। प्राणायाम की जगह प्राणों का प्रश्वास ही वर्जित कर देते हैं नासिका और मुख बांधकर प्राणों को अवरुद्ध करते हैं, वे कुम्भक होता है तो भी लोग फांसी पर चढ़ते हैं उन्होंने कुम्भक का ठीक समझना चाहिए, यथार्थ स्वरूप कुम्भक का यह है कि बाहर वायु बाहर ही बाहर रोक रखना। बाहर निकालने में विशेष उपाय करने से रेचक होता है। भीतर के भीतर प्राणों को रखने से पूरक होता है। यह प्राणायाम का विधान है।"

६१. "अब प्राणायाम का विचार किया जाता है। श्वास और प्रश्वास अर्थात् अन्दर, बाहर श्वास की अवरोध को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम का प्रयोजन है कि बहुत देर तक श्वास रोका जावे। बहुत समय तक प्राणायाम करने से चित्त एकाग्र हो जाता है, प्राणायाम का मुख्य काम यह है कि यदि योगशास्त्र के अनुकूल श्वास बाहर छोड़े तो शरीर की नीरोगता की वृद्धि होती है।"

६२. "ईश्वर में लौ लगाने को 'प्रत्याहार' कहते हैं।
मुख्य मुख्य स्थानों में चित्त को स्थिर करने का नाम 'धारणा' है।

आत्मा, मन, और इन्द्रियों को किसी वस्तु में लगाकर उस वस्तु पर मनन करने का नाम 'ध्यान' है।

ईश्वर में लय होने का नाम 'समाधि' है।

जब धारणा ध्यान और समाधि तीनों एकत्र हों तो उसे 'संयम' कहते हैं।

६३. "रागोपहतिर्ध्यानम्। सां.द. ३।३०॥
ध्यानं निर्विषयं मनः। सां.द. ६।२५॥
तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।" यो.द. ३।२॥

६४. "मूलेन्द्रिय से लेके ऊपर से अपान वायु को नाभि में ले जाना, नाभि से समान को और समान को हृदय में ले जाना, हृदय में दोनों के और तीसरा प्राण इन तीनों को वहाँ से नासिका द्वार से बाहर आकाश में फेंक देना जो वायु कुछ नासिका से निकलता है और भीतर जाता है उन सब का नाम प्राण है। उसका मूलेन्द्रिय नाभि और हृदय से ऊपर ठेल के तब तक वायु न निकाले जैसे कि वमन से बाहर फेंका अन्न जाता है वैसे सब भीतर के वायु को बाहर फेंक दे फिर उसको मुख्यता से नियम करके बाहर ही वायु को रोक रखे जब चित्त में कुछ क्लेश होने लगे तब बाहर

से वायु को धीरे-धीरे भीतर ले जा फिर उसको बाहर वैसा ही बारम्बार २० बार भी करेगा उसका प्राणवायु स्थिर हो जायगा और उसके साथ चित्त भी स्थिर होगा बुद्धि और ज्ञान बढ़ेगा। बुद्धि इस प्रकार की तीव्र होगी कि बहुत कठिन विषयों को भी शीघ्र जान लेगी। शरीर में बल पराक्रम होगी तथा जितेन्द्रियता होगी तथा शास्त्रों को बहुत थोड़े काल में पढ़ लेगा।"

६५. पञ्च उपप्राण।
नाग:- सम्पूर्ण शरीर में व्यापक रहकर शरीर को स्फूर्ति प्रदान करती है तथा डकार लाता है।
कूर्म:- शारीरिक कम्पन, नेत्रोन्मीलन कूर्म वायु का कार्य है।
कृकल:- भूख लगाता है तथा डकार लाता है।
देवदत्त:- जम्हाई लाता है।
धनञ्जय:- शरीर में व्यापक रहकर नाद उत्पन्न करता है।

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्री स्वामी आत्मानन्द तीर्थ स्वामि विरचिते
आर्य सुभाषानुदिते अध्यात्म विवेकः।